अनुबोधन, खण्ड 1, अंक 4, दिसम्बर 2025, पृष्ठ 169–185
ISSN: 3049-4184 (प्रिन्ट), 3108-1185 (ऑनलाइन)
प्रकाशित: 31 दिसम्बर 2025
जर्नल वेबसाइट: https://anubodhan.org
DOI: 10.65885/anubodhan.v1n4.2025.040

ध्यान योग के मार्ग: धारणा, ध्यान, समाधि एवं ब्रह्मानुभूति

ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह*

मानव जीवन केवल भौतिक उन्नति या इन्द्रिय–सुख में लिप्त रहने के लिए नहीं हुआ अपितु, आत्मिक उन्नति, शांति और परम सत्य की प्राप्ति ही इसका परम लक्ष्य है। भारत के प्राचीन दर्शन में ध्यान को साधना का सर्वोपरि साधन माना गया है। ध्यान केवल मानसिक अभ्यास न होकर जीवन की दिशा और चेतना का परिष्कार है। महर्षि पतंजलि, अपने ग्रन्थ योगसूत्र में धारणा, ध्यान और समाधि को क्रमशः साधक की अंतःयात्रा के चरणों के रूप में विवेचित करते हैं। जब यह तीनों चरण परिपक्व रूप से साधक के अंतस में पल्लवित होते हैं, तब वह "संयम" की अवस्था को प्राप्त होता है, जो अंततः ब्रह्म या परमात्मा के साक्षात्कार का द्वार खोलती है।

"ध्यान" शब्द की उत्पति संस्कृत धातु "धि" से होती है, जिसका अभिप्राय है- धारण करना, केंद्रित करना या मन को किसी वस्तु में स्थिर करना। भारतीय मनीषा ध्यान को कदाचित मानसिक एकाग्रता मात्र नहीं, अपितु चेतना के आत्मबोध के रूप में परिभाषित करती है। प्राचीन भारतीय साहित्य के स्रोत वेद, ध्यान के मूल को "उपासना" के पर्याय के रूप में देखते हैं। इसी प्रकार उपनिषद ध्यान को आत्मा और ब्रह्म के अद्वैत का साक्षात्कार की विधा मानते हैं। महर्षि वेद व्यास भगवद्गीता में ध्यानयोग को मोक्ष के साधन के रूप में वर्णित करते हैं। योगशास्त्र के मनीषी महामना पतंजलि अपने ग्रन्थ योगसूत्र में योग के अष्टांग मार्गों धारणा, ध्यान और समाधि को ध्यान–प्रक्रिया के विशिष्ट चरणों के

*शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग, दी० द० उ० गो० वि० वि०, गोरखपुर

रूप में परिभाषित करते हैं और ध्यान के विकास को केवल साधना/तकनीक तक सीमित न करते हुए इसे जीवन की संपूर्ण आध्यात्मिक यात्रा का आधार मानते हैं। योगसूत्र (तृतीय पाद) में पतंजलि ध्यान के प्रमुख चरणों के रूप में **"त्रयमेकत्रसंयमः"** अर्थात धारणा, ध्यान और समाधि का वर्णन करते हुए स्थापित करते हैं कि जब ये तीनों एकत्र होकर साधक की चेतना को एकाग्र करते हैं, तभी साधक "संयम"की अवस्था को प्राप्त करता है।

धारणा से अभिप्राय है– मन को किसी एक स्थान, वस्तु या विचार पर संकेंद्रित करना। यह ध्यान की प्रथम सीढ़ी है एवं इस प्रक्रिया में साधक मन को किसी निश्चित बिंदु, जैसे**-** नासिका, हृदयस्थल, त्रिकूटि (भृकुटि के मध्य), या मंत्र **(ॐ)** गायत्री पर स्थिर करता है और चंचल होते मन को बार–बार लक्ष्य की ओर लौटाने का प्रयास करता है। यद्यपि की इस कार्य में विविध चुनौतियों जैसे मन का भटकाव, इन्द्रिय–विकार, बाहरी व्यवधान इत्यादि जैसी बाधाओं का सामना करते हुए मानसिक अनुशासन, एकाग्रता, स्मृति–वृद्धि, और चित्त की शुद्धि जैसी अवस्थाओं को प्राप्त करने में सफल रहता है। कदाचित धारणा में भी मन बार–बार विचलित होता है, परंतु साधना के निरन्तर अभ्यास से यह स्थिर होने लगता है। ध्यान, धारणा की परिपक्व अवस्था है अर्थात् जब मन स्थिरता प्राप्त कर लेता है, और साधक बिना प्रयास के चयनित विषय में लीन होने में सफलता प्राप्त करने लगता है, तब वास्तव में ध्यान की अवस्था प्रारंभ होती है, इस प्रक्रिया में साधक मंत्र, मूर्ति, प्रकाश–बिंदु या निराकार आत्मबोध में निरंतर एकाग्र रहते हुए मन और विषय का गहन सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान में स्वतः प्रवाहित होते हुए तनाव का शमन, गहन शांति, आत्मबोध की सरिता में गोते लगता है। गीता (6.18) में भगवान कृष्ण कहते हैं**; "यदाविनियतं चित्त मात्मन्ये वावतिष्ठते। निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा॥"** अर्थात् साधक का मन आत्मा में ही स्थिर हो जाए, वह सभी कामनाओं से मुक्त एवं योगमय होकर ध्यान की परम पराकाष्ठा समाधि को प्राप्त करते हुए साधक और साध्य के भेद को मिटा दे। कदाचित साधक सविकल्प समाधि में हो, जहाँ उसके चित्त में विषय का अस्तित्व तो बना रहे है किंतु वह उससे पूर्णतः एकाकर हो जाये अथवा निर्विकल्प समाधि जहाँ विषय, मन, अहंकार सब लुप्त हो जायें एवं किंचित मात्र शुद्ध चैतन्य शेष रहे।

समाधि की अवस्था में साधक आत्मस्थ, ब्रह्मलीन एवं लक्ष्याभिमुख होकर समय, स्थान और परिस्थिति से परे अनुभव करने लगे एवं परम शांति, आनन्द और आत्म–साक्षात्कार की दशा को प्राप्त कर ले। पतंजलि द्वारा रचित योगसूत्र में भी यह कहा गया है; **"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्"** अर्थात समाधिस्थ साधक अपने शुद्ध स्वरूप में स्थिर हो जाता है। धारणा, ध्यान और समाधि के क्रमिक विकास का परम फल "ब्रह्मसाक्षात्कार" है। ब्रह्म, अनंत, अखंड और निराकार परम चेतना है, ब्रह्म को उपनिषदों में भी **"सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म"** के रूप में वर्णित किया गया है। अद्वैत वेदांत में **"अहं ब्रह्मास्मि"** का उद्घोष यह उद्घाटित करता है कि आत्मा और ब्रह्म भेदरहित हैं और समाधिस्थ होना ही ब्रह्मसाक्षात्कार है, जहाँ ईश्वर प्रेममय और भक्तिमय भाव में विद्यमान होता है। समाधि से आगे की यात्रा ही ब्रह्म के साथ एकाकार होने एवं साधक की साधना पूर्ण होने की अवस्था है। ब्रह्मसाक्षात्कार की यह अवस्था कदाचित बौद्धिक समझ मात्र नहीं है, अपितु अनुभवात्मक सत्य का सार है।

आधुनिक शरीर विज्ञानियों ने भी धारणा और ध्यान को कदाचित दर्शन मात्र न मानते हुए इसकी वैज्ञानिक व्याख्या करने का प्रयास किया और मस्तिष्क पर ध्यान के प्रभाव को स्वीकारते हुए कहा कि ध्यान से **प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स** सक्रिय होते हैं, जिससे स्मृति और निर्णय–क्षमता बढ़ती है। ध्यान से **कॉर्टिसोल** हार्मोन का स्तर घटता है, जिससे चिंता और अवसाद कम होते हैं और तनाव शैथिल्य होता है, हृदय गति नियंत्रित होती है, रक्तचाप कम होता है, ध्यान मन को संतुलित करता है और रचनात्मकता को बढ़ाता है। वास्तव में ध्यान को साधने हेतु विविध प्रक्रियाएं हैं जिनका अनुपालन करते हुए ब्रह्मसाक्षात्कार की अवस्था का मार्ग प्रशस्त होता है; प्रमुख स्थिरासन– सुखासन, पद्मासन या वज्रासन श्वास की लय को नियंत्रित करता है। प्राणायाम मन को एक बिंदु या मंत्र पर संकेंद्रित करती है। ध्यान धारित विषय में सहज रूप से ध्यानमग्नता और अंततः साधक और विषय का विलय होकर शुद्ध चेतना का अनुभव करते हुए समाधिस्थ हो जाने में मदद करती है। वस्तुतः ध्यान केवल साधकों तक सीमित नहीं है वरन यह आज की भौतिकतावादी और तनावपूर्ण जीवनशैली में सभी के लिए आवश्यक है। छात्र इसका प्रयोग करके अपनी स्मृति और एकाग्रता को नियंत्रित कर सकते हैं। अध्यव्यवसायिक लोग इसके माध्यम से तनाव–निवारण और कार्यक्षमता पर कार्य कर सकतें हैं, गृहस्थ भी

इसके दैनन्दिन अभ्यास से मानसिक शांति और पारिवारिक सामंजस्य स्थापित करने में सफल हो सकते हैं, आध्यात्मिक साधकों के लिए तो यह आत्मज्ञान और ब्रह्मसाक्षात्कार का अनन्तिम मार्ग ही है। निष्कर्षत: ध्यान की प्रक्रिया धारणा से प्रारंभ होकर ध्यान और समाधि की ओर बढ़ती है और अंततः ब्रह्मसाक्षात्कार तक पहुँचाती है। यह यात्रा केवल साधना नहीं, बल्कि जीवन का परिष्कार है। आधुनिक युग में जहाँ मनुष्य बाह्य सुख–सुविधाओं में उलझा है, वहीं ध्यान आंतरिक शांति और आत्मिक परिपूर्णता का द्वार खोलता है। धारणा से प्रारंभ होकर साधक धीरे–धीरे ध्यान और समाधि की उच्चावस्था तक पहुँचता है और अंततः ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। यही मानव जीवन का चरम उद्देश्य है।

प्रथम चरण: धारणा

'धारणा' शब्द संस्कृत की धातु 'धृ' से उत्पन्न हुआ है, जिसका अभिप्राय है- धारण करना, स्थिर करना अथवा पकड़े रखना। पतंजलि योगसूत्र (3.1) में इसकी परिभाषा दी गई है, **"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा"** अर्थात् चित्त को किसी एक स्थान, बिंदु, विषय या ध्येय पर बाँधना ही धारणा है। मानव मन स्वभावतः चंचल माना जाता है। श्रीमदभगवद्गीता (6.34) में अर्जुन कहते हैं, **"चचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम"** अर्थात् मन अत्यंत अस्थिर और विचलित करने वाला है। इस अस्थिरता को नियंत्रित करने का पहला अभ्यास ही धारणा है। वास्तव में ध्यान और समाधि की ओर बढ़ने का मार्ग धारणा से ही आरंभ होता है। इसलिए इसे ध्यान योग का प्रवेश द्वार कहा गया है। सरल भाषा में, धारणा का आशय है, मन को बाहरी विचलनों से हटाकर किसी एक विषय अथवा वस्तु पर स्थिर कर देना। उपनिषदों में कहा गया है, **"यत्र यत्र मनो याति तत् तत् धारयेत् धृतम।"** अर्थात् मन जहाँ–जहाँ भटके, साधक उसे बार–बार लक्ष्य पर स्थिर करे, यही सच्ची धारणा है। श्रीमदभगवद्गीता (6.25) में भी श्रीकृष्ण उपदेश देते हैं कि साधक को धैर्य और संयम के साथ धीरे–धीरे मन को लक्ष्य में स्थिर करना चाहिए। कदाचित धारणा और ध्यान में सूक्ष्म अंतर है। धारणा वह अवस्था है जिसमें साधक मन को किसी एक विषयविन्दु पर स्थिर करने का प्रयास करता है और जब वही एकाग्रता निरंतर धारा बन जाती है तो ध्यान कहलाती है और अंततः साधक तथा साध्य का भेद मिट जाने पर समाधि की स्थिति उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ, दीपक की लौ पर दृ ष्टि स्थिर करना धारणा है; लौ पर मन का अखंड प्रवाह ध्यान है; और लौ तथा साधक का एकाकार हो जाना समाधि है।

आधुनिक मनोविज्ञान भी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि सामान्य व्यक्ति का मन हर 6-10 सेकंड में एक विषय से दूसरे विषय पर चला जाता है। किंतु नियमित अभ्यास से एकाग्रता की अवधि को बढ़ाया जा सकता है। धारणा से स्मरणशक्ति, कार्यक्षमता और आत्मविश्वास में वृद्धि होती है तथा चिंता और मानसिक अस्थिरता में कमी आती है। शास्त्रों में धारणा के लिए विभिन्न स्थलों का उल्लेख है, एकाग्रता और मानसिक स्थिरता हेतु भूमध्य (आज्ञा चक्र), करुणा और प्रेम की वृद्धि के लिए हृदय (अनाहत चक्र), आत्मबल और आत्मविश्वास के लिए नाभि (मणिपुर चक्र), श्वास–जागरूकता के लिए (नासिका अग्र) दीपक की लौ, मूर्ति, मंडल या मंत्र पर ध्यान केंद्रित करना (बाह्य धारणा), भूमध्य, हृदय अथवा नाभि जैसे आंतरिक बिंदुओं पर एकाग्रता (आंतरिक धारणा), 'ॐ' या **'सोऽहम'** जैसे मंत्र का निरंतर जप कर मन को स्थिर करना (मंत्र–जप), श्वास–प्रश्वास का साक्षी बनकर एकाग्रता विकसित करना (श्वास पर ध्यान)। अभ्यास के दौरान साधक कई कठिनाइयों का अनुभव करता है, जैसे मन का चंचल होना और विचारों का बार-बार आना, नींद का आ जाना, अधैर्य और त्वरित परिणाम की अपेक्षा, शारीरिक असुविधाएँ (पीठ, गर्दन या पैर में दर्द) इत्यादि। पतंजलि ने इन अवरोधों को **"अन्तराय"** कहा है, जैसे व्याधि (बीमारी), स्थ्यान (उदासीनता), संशय, आलस्य, प्रमाद और भ्रान्ति। धारणा की प्रबलता से स्मरणशक्ति, ध्यानशक्ति और भावनात्मक संतुलन, रक्तचाप व हृदय गति का संतुलन, मस्तिष्क की कार्यक्षमता में वृद्धि, आत्म–साक्षात्कार, तेज रफ्तार और तनावपूर्ण जीवनशैली, पढ़ाई में एकाग्रता और सफलता, निर्णय क्षमता और नेतृत्व कौशल का विकास, रचनात्मकता और कल्पनाशक्ति, तनाव और चिंता से मुक्ति आदि में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

आधुनिक शोध भी धारणा के प्रभाव को पुष्ट करते हैं; एमआईटी और स्टैनफोर्ड के अध्ययनों में पाया गया कि एकाग्रता अभ्यास से **प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स** की सक्रियता बढ़ती है, ध्यान और धारणा साधकों में **डोपामिन** और **सेरोटोनिन** हार्मोन का संतुलन बना रहता है, जिससे आनंद और शांति की अनुभूति होती है। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के एक अध्ययन में यह प्रमाणित हुआ कि केवल आठ सप्ताह की नियमित साधना से मस्तिष्क की **ग्रे मैटर डेंसिटी** में वृद्धि हुई। निष्कर्षत: धारणा साधना का प्रथम चरण है, जो ध्यान और समाधि की आधारभूमि तैयार करता है। यह मन को अनुशासित और स्थिर बनाती है तथा आधुनिक

जीवन की चुनौतियों जैसे तनाव, चिंता और एकाग्रता की कमी का समाधान प्रस्तुत करती है। अतः यह कहना समीचीन है कि धारणा वह सेतु है जो सामान्य चित्त को ध्यान और समाधि की ऊँचाइयों तक पहुँचाती है।

द्वितीय चरण: ध्यान

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में ध्यान का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वेदों में ध्यान को "उपासना" कहा गया है, जिसका अर्थ है- समीप बैठना, ईश्वर के समीप होना। उपनिषदों में ध्यान को आत्मा और ब्रह्म के साक्षात्कार का साधन बताया गया है। छाँदोग्य उपनिषद कहता है **"ध्यानाल्लभ्यस्तदन्यथा न"** अर्थात् ब्रह्म का अनुभव केवल ध्यान से संभव है, अन्य किसी उपाय से नहीं। भगवद्गीता (अध्याय 6, श्लोक 6) में श्रीकृष्ण योगी की महिमा बताते हुए कहते हैं कि जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, वही सच्चा योगी है और वही सच्चे ध्यान का अधिकारी। पतंजलि ध्यान को अष्टांग योग की सातवीं सीढ़ी मानते हैं एवं कहते हैं, **"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम"** (योगसूत्र 3.2) अर्थात् किसी एक विषय पर चित्त का निरंतर प्रवाह ही ध्यान है। इन ग्रंथों के माध्यम से स्पष्ट होता है कि ध्यान कोई आधुनिक "प्रैक्टिस" नहीं, बल्कि प्राचीन भारत की आत्मा है, जिसने हजारों वर्षों से साधकों को मोक्ष, ज्ञान और आनंद की ओर अग्रसर किया है। सारत: कहा जाए तो ध्यान की प्रक्रिया मानव जीवन की सर्वोच्च साधना है। यह साधना व्यक्ति को बाहरी जगत से भीतर की ओर मोड़ती है। ध्यान की यात्रा धारणा से प्रारंभ होकर समाधि तक पहुँचती है और अंततः ब्रह्म का साक्षात्कार कराती है। यही वह स्थिति है, जहाँ व्यक्ति पूर्ण शांति, आनंद और मुक्त अवस्था को प्राप्त करता है। भारतीय संस्कृति की नींव वेदों पर आधारित है। वेद, ध्यान को "उपासना" और "तप" के रूप में अभिव्यक्त करते हैं।

ऋग्वेद में ध्यान को आत्मा की अंतःचेतना के जागरण से जोड़ा गया है। मंत्रों का उच्चारण और ध्यान, दोनों मिलकर साधक को दिव्य ऊर्जा प्रदान करते हैं। सामवेद में ध्यान को "ध्वनि-योग" के रूप में देखा गया है, जहाँ स्वर, नाद और मंत्रोच्चार साधक की चेतना को एकाग्र करते हैं। अथर्ववेद में ध्यान को रोग-निवारण, शांति और मानसिक संतुलन के उपाय के रूप में माना गया है। वेद कहतें हैं ध्यान का अर्थ है- ईश्वर का स्मरण करते हुए मन को एक बिंदु पर स्थिर

करना। इसे केवल मानसिक अभ्यास नहीं, बल्कि जीवन का अनिवार्य अंग माना गया। वेदांत, ध्यान को ब्रह्मविद्या प्राप्त करने के साधन के रूप में व्याख्यापित करता है। उपनिषद कहते हैं, **"ध्यानमूलं ज्ञानं, ध्यानमूलं सर्वं।"** अर्थात् ध्यान ही ज्ञान का मूल है, ध्यान ही सबका आधार है। उपनिषदों में ध्यान की व्याख्या अत्यंत गहन रूप में मिलती है। यहाँ ध्यान केवल मानसिक शांति का साधन नहीं, बल्कि आत्मा और ब्रह्म के साक्षात्कार का मार्ग है। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है कि ध्यान ही ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग है। ब्रह्म का अनुभव केवल ध्यान से होता है, किसी अन्य उपाय से नहीं। मुण्डकोपनिषद में ध्यान को आत्मज्ञान की प्रक्रिया बताया गया है। यहाँ कहा गया है कि जैसे धनुष पर चढ़ा हुआ तीर लक्ष्य को भेदता है, वैसे ही ध्यान से साधक परमात्मा तक पहुँचता है। कठोपनिषद में आत्मा को रथी, बुद्धि को सारथि और मन को लगाम बताया गया है। यदि मन को वश में कर लिया जाए तो साधक परम ध्येय तक पहुँच सकता है। ईशावास्य उपनिषद में ध्यान को संसार और ईश्वर के बीच सेतु बताया गया है। यहाँ कहा गया है कि जो ध्यान द्वारा आत्मा को जान लेता है, वही अमृतत्व को प्राप्त करता है। भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, **"योगी ध्यानमग्नो भवति।"** अर्थात् सच्चा योगी वही है जो ध्यान में लीन रहता है। इस प्रकार ध्यान को केवल साधना का अंग न मानकर, जीवन का सार और मानव अस्तित्व की चरम परिणिति माना गया है। भगवद्गीता ध्यान को जीवन का आधार मानती है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए ध्यान योग का विस्तृत वर्णन किया है। गीता (अध्याय 6) में श्रीकृष्ण में कहते हैं-

"समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।

संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन॥" (गीता 6.13)

अर्थात् योगी को शरीर, सिर और गर्दन को स्थिर रखकर, नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर ध्यान करना चाहिए। गीता में ध्यान को केवल साधना नहीं, बल्कि जीवन शैली माना गया है। यहाँ बताया गया है कि योगी का आहार, व्यवहार, निद्रा और जागरण सभी संतुलित होना चाहिए। गीता का एक प्रसिद्ध श्लोक है-

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥" (गीता 6.17)

अर्थात् योग और ध्यान उसी व्यक्ति के लिए सफल होते हैं, जो अपने आहार, विहार, कर्म और निद्रा–जागरण में संयम रखता है, गीता ध्यान को न केवल साधना बल्कि संपूर्ण जीवन का विज्ञान मानती है। पतंजलि ऋषि द्वारा रचित योगसूत्र ध्यान के वैज्ञानिक और व्यवस्थित स्वरूप को प्रस्तुत करता है। पतंजलि के अनुसार योग की आठ सीढ़ियाँ (अष्टांग योग) हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें ध्यान सातवीं सीढ़ी है।

गौतम बुद्ध ने ध्यान (विपश्यना और समाधि) को जीवन का केंद्र माना। उनका कथन था कि सत्य का अनुभव केवल ध्यान से ही संभव है। बौद्ध साधना में ध्यान को **"सम्यक समाधि"** कहा गया है, जो अष्टांगिक मार्ग का प्रमुख अंग है। जैन धर्म में ध्यान को "योग" और "समाधि" की स्थिति माना गया है। यहाँ ध्यान को चार प्रकार में विभाजित किया गया है, आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान। इनमें शुक्ल ध्यान को सर्वोच्च माना गया है, जो आत्मा को मुक्त करता है।

आज का विज्ञान भी यह स्वीकार करता है कि ध्यान का प्रभाव केवल मानसिक ही नहीं, बल्कि शारीरिक और सामाजिक भी होता है। न्यूरोसाइंस (तंत्रिका विज्ञान) के शोध बताते हैं कि ध्यान से **ब्रेन वेव्स** (मस्तिष्क तरंगें) बदलती हैं और **गामा वेव्स** अधिक सक्रिय होती हैं, जो उच्च चेतना और रचनात्मकता से जुड़ी होती हैं। ध्यान से **कॉर्टिसोल हार्मोन** (तनाव हार्मोन) का स्तर घटता है। हार्वर्ड मेडिकल स्कूल के अध्ययन में पाया गया कि नियमित ध्यान से मस्तिष्क की **ग्रे मैटर डेंसिटी** बढ़ती है, जिससे स्मृति और निर्णय क्षमता बेहतर होती है। इस प्रकार ध्यान शास्त्र और विज्ञान, दोनों की कसौटी पर खरा उतरता है। स्पष्टतया इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि ध्यान केवल आधुनिक मानसिक तकनीक नहीं, बल्कि भारत की शाश्वत परंपरा है। वेदों में यह उपासना है, उपनिषदों में आत्मा–ब्रह्म के साक्षात्कार का साधन, गीता में जीवन शैली, पतंजलि योगसूत्र में वैज्ञानिक अनुशासन, बौद्ध और जैन परंपरा में मुक्ति का मार्ग। अर्थात ध्यान भारतीय संस्कृति का हृदय है, जो व्यक्ति को भीतर से बदलता है और उसे परम शांति व ब्रह्म की ओर ले जाता है।

ध्यान का अभ्यास केवल भारत में ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया की विभिन्न परंपराओं में पाया जाता है। प्राचीन मिस्र की सभ्यता में, ईसाई मठों में, इस्लामी सूफी संतों के जिक्र और मुराकबा में, बौद्ध भिक्षुओं में

आत्म–दर्शन के मार्ग के रूप में विपश्यना साधना और यहाँ तक कि आधुनिक मनोचिकित्सा और माइंडफुलनेस अर्थात तत्क्षण मष्तिष्क की सजगता और जागरूकता जैसी प्रथाओं में भी ध्यान का प्रयोग हुआ है। यह इस तथ्य को सिद्ध करता है कि ध्यान मनुष्य की आंतरिक संरचना की एक स्वाभाविक आवश्यकता है। लेकिन भारतीय दृष्टिकोण ध्यान को केवल मानसिक स्वास्थ्य या स्थिरता का साधन नहीं मानता, बल्कि मोक्ष, कैवल्य, और ब्रह्मानुभूति की सीढ़ी के रूप में देखता है। यही भारतीय चिंतन को वैश्विक स्तर पर अद्वितीय बनाता है। ध्यान की अनेकानेक पद्धतियाँ हैं, परन्तु इन्हें मुख्यतया दो भागों में बाँटा गया है, सगुण ध्यान जिसमें ईश्वर या किसी प्रतीक (मूर्ति, मंत्र, प्रकाश, ध्वनि) पर ध्यान को केन्द्रित करना होता है, दूसरा है निर्गुण ध्यान जो आत्मा या निराकार ब्रह्म पर केंद्रित ध्यान की विधा है। अन्य विधाओं में सबसे प्रचलित रूप है निरंतर मंत्रो का जप करते हुए मन को उसी ध्वनि–तरंग पर केंद्रित करते हुए "ॐ" का उच्चारण और उसका ध्यान। बौद्ध विपश्यना ध्यान में श्वास पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। श्वास का आना–जाना, उसकी गति और उसकी गहराई को देखना यह एक सरल किन्तु प्रभावी विधि है। त्राटक ध्यान दीपक की लौ, चंद्रमा, किसी बिंदु या प्रतीक पर दृष्टि स्थिर करके ध्यान करना। यह नेत्र–ज्योति और मन की एकाग्रता दोनों को बढ़ाता है। ध्यान में भावनात्मकता भक्ति योग की पद्धति में साधक ईश्वर का रूप, गुण और लीला का ध्यान करता है। इससे हृदय में भक्ति, प्रेम और समर्पण की भावनाएँ प्रकट होती हैं। राजयोग में ध्यान का स्थान सर्वोच्च है। यहाँ ध्यान आत्मसाक्षात्कार की अनिवार्य अवस्था है। हठयोग में शारीरिक और प्राणायाम संबंधी साधनाओं के माध्यम से ध्यान की तैयारी की जाती है। भक्ति योग में ईश्वर के प्रति समर्पण और प्रेम से ध्यान सहज हो जाता है। ज्ञान योग में आत्म–विचार और "मैं कौन हूँ" के चिंतन के माध्यम से ध्यान की स्थिति आती है।

तृतीय चरण: समाधि

"समाधि" का शाब्दिक अर्थ है- "सम्यक् + आ + धा" अर्थात् पूरी तरह से स्थिर होना, पूर्ण एकाग्रता। पतंजलि योगसूत्र (3.3) में कहा गया है: **"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः"** अर्थात् जब ध्यान की निरंतरता इतनी गहन हो जाती है कि उसमें केवल विषय ही प्रकट होता है और साधक का स्वरूप लुप्त हो जाता है, तो उसे समाधि कहते

हैं। अर्थात् समाधि वह अवस्था है, जहाँ चित्त का विक्षेप समाप्त हो जाता है। साधक और साध्य का भेद मिट जाता है। केवल शुद्ध चेतना या ब्रह्म ही शेष रहता है। ध्यान के चरम परिणामस्वरूप जब साधक की चेतना अपने ध्यान–विशय में पूर्ण रूप से लीन हो जाती है, तब उसे समाधि कहते हैं। योग का अंतिम उद्देश्य समाधि ही है। पतंजलि कहते हैं, **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"** अर्थात चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध समाधि में ही संभव है। समाधि में साधक स्वयं को अपने वास्तविक स्वरूप "सच्चिदानंद" के रूप में पहचानता है। मानसिक दृष्टि से समाधि का स्वरूप विचार–रहित पूर्ण शांति की स्थिति है। दार्शनिक दृष्टि से समाधि का स्वरूप आत्मा और परमात्मा का मिलन माना जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से समाधि का स्वरूप मस्तिष्क की ऐसी अवस्था है जिसमें बीटा तरंगें शिथिल हो जाती हैं और अल्फा और थीटा तरंगें प्रबल हो जाती हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से समाधि का स्वरूप आत्म–साक्षात्कार और मोक्ष के द्वार के रूप में परिभाषित है । समाधि और ध्यान के अंतर के विभेद को विद्वान निम्नवत व्याख्यापित करते हैं-

क्रम	**ध्यान**	**समाधि**
1	निरंतर चित्त प्रवाह	चित्त का पूर्ण विलय
2	साधक और साध्य दोनों का बोध	केवल साध्य का बोध
3	अभ्यास की गहन अवस्था	अभ्यास का चरम परिणाम
4	अभी भी "मन" सक्रिय	मन का पूर्ण लय

पतंजलि समाधि को दो मुख्य वर्गों में विभाजित करते हैं– संप्रज्ञात (सबीज समाधि) एवं असंप्रज्ञात समाधि (निर्बीज समाधि)। संप्रज्ञात समाधि (सबीज समाधि) में ध्यान के विषय का बोध बना रहता

है तथा मन और चित्त अपनी सूक्ष्म वृत्तियों के साथ सक्रिय रहते हैं। इसके भी चार उप प्रकार हैं, पहला– सवितर्क समाधि, वह प्रारंभिक अवस्था है जिसमें साधक किसी स्थूल विषय (देवता, मूर्ति, मंत्र) पर विचारमग्न रह कर ध्यान करता है इस क्रिया में साधक के अंतस में अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है। निर्वितर्क समाधि में विषय स्थूल ही रहता है, परंतु तर्क–वितर्क समाप्त हो जातें है तथा साधक स्थूल विषय पर बिना तर्कना के समाधिस्थ रहता है। सविचार समाधि में ध्यान सूक्ष्म विषय पर केंद्रित तो रहता है, पर विचार रुपी अनेकानेक लहरें उपस्थित रहती हैं और साधक सूक्ष्म विषय (सूक्ष्म तत्व, चक्र, नाड़ी) पर समस्त विचारों सहित लीन रहता है। निर्विचार समाधि में साधक सूक्ष्म विषय पर विचारहीन होकर तल्लीन रहता है। असंप्रज्ञात समाधि जिसे निर्विकल्प या निरबीज समाधि भी कहते हैं, में कोई विषय, कोई संकल्प या विचार शेष नहीं रहता है, वरन इसमें साधक और साध्य का भेद मिट जाता है, कोई द्वैत नहीं, केवल अद्वैत की अनुभूति होती है और केवल शुद्ध चैतन्य का अनुभव होता है एवं यही कैवल्य या मुक्ति की अवस्था है। धर्ममेघ समाधि को पतंजलि योग की सर्वोच्च अवस्था मानते हैं, जिसमें साधक सभी संस्कारों और कर्मों से मुक्त होकर केवल धर्ममय मेघ की तरह ज्ञानवर्षा करता है।

उपनिषद और अद्वैत वेदांत समाधि को दो प्रमुख वर्गों में बाँटते हैं विकल्प समाधि इसमें किसी आधार (मंत्र, देवता, ध्यान-प्रतिमा) का संकल्प रहता है। साधक अभी द्वैत की स्थिति में रहता है। यह आरंभिक और साधक के लिए आवश्यक अवस्था है। दूसरा निर्विकल्प समाधि जिसमें किसी भी प्रकार का संकल्प, विचार या प्रतीक नहीं रहता। साधक केवल आत्मा और परमात्मा की अद्वैत सत्ता में लीन होता है। यही "ब्रह्मानुभव" है। भक्तियोग में समाधि का अर्थ है भगवान के नाम, रूप, लीला या गुण में पूर्ण लीनता। यहाँ समाधि का विषय ईश्वर–प्रेम है। साधक अपने अस्तित्व को भुलाकर केवल प्रभु के चरणों में मग्न रहता है। इसे "प्रेम–समाधि" कहा जाता है। सांख्य दर्शन समाधि में पुरुष और प्रकृति के स्पष्ट भेद को मानता है। बुद्ध ने समाधि को सम्यक समाधि कहा, जो निर्वाण का मार्ग है। जैन दर्शन में समाधि आत्मा को कर्मबंधन से मुक्त करती है। भक्ति परंपरा में समाधि को ईश्वर में पूर्ण विलीनता माना गया। वास्तव में शरीर और श्वास को स्थिर करते हुए मन को केंद्रित और निरंतर प्रवामन रखकर विषयों से विरक्त होकर निरन्तर साधनारत और साक्षी भाव से सभी अनुभवों को उनमें

आसक्त हुए बिना केवल देखना मात्र और धीरे–धीरे साधक का साध्य में लोप हो जाना। अर्थात् "समाधि ही वह अंतिम अवस्था है, जहाँ साधक स्वयं को नहीं, केवल परम को देखता है।"

परम चरण: ब्रह्मानुभूति

धारणा, ध्यान और समाधि की क्रमिक साधना का अंतिम लक्ष्य है- ब्रह्मानुभूति। योगदर्शन के अनुसार, जब साधक समाधि में स्थित होकर अपने आत्मस्वरूप का अनुभव करता है और व्यक्तिगत 'मैं' का लोप होकर समष्टिगत 'परमात्मा' के साथ एकत्व स्थापित होता है, तभी उसे ब्रह्मानुभूति होती है।यह वह अवस्था है जहाँ ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय तीनों भेद मिट जाते हैं। भारतीय दर्शन में ब्रह्म को अद्वैत, अनादि, अनंत और अखंड सत्य माना गया है। उपनिषद कहते हैं **"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"**। गीता में कहा गया है **"ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति"**। शंकराचार्य के अनुसार, ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, जगत मिथ्या है और जीव ब्रह्म का ही अंश है। ब्रह्म न तो इंद्रियानुभविक है और न ही बुद्धि से पूर्ण रूप से समझा जा सकता है। यह केवल अनुभव द्वारा जाना जा सकता है, जिसे समाधि और ध्यान के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। ब्रह्मानुभूति कोई बाहरी घटना नहीं, बल्कि आंतरिक जागृति है। इसकी यात्रा धारणा, ध्यान और समाधि से पूर्ण होती है जो साधक और साध्य के एकत्व अर्थात् आत्मा और परमात्मा के एकत्व के रूप में ब्रह्मानुभूति की ओर सविकल्प अवस्था, (अर्थात् साधक ध्यानमग्न तो रहता है, परंतु उसके मन में अभी भी सूक्ष्म संकल्प–विकल्प बने रहते हैं।) निर्विकल्प अवस्था (जिसमें सभी संकल्प–विकल्प मिट जाते हैं, केवल चेतना का प्रकाश शेष रह जाता है।) एवं सहज अवस्था (जिसमें समाधि से बाहर आने के बाद भी साधक हर क्षण ब्रह्म में ही स्थित रहता है।) रुपी मार्गों के माध्यम से जीवन मुक्ति प्रशस्त कराती है। ब्रह्मानुभूति को शब्दों में व्यक्त करना कठिन माना गया है। फिर भी साधकों द्वारा इसे गहन शांति और आनंद की अनुभूति के रूप में अनुभूत किया जाता है, जिसमें भय, मोह और दुख का पूर्ण अभाव होता है। 'मैं' और 'मेरा' के क्षुद्र भाव का लोप हो जाता है, और सम्पूर्ण जगत के लिए एक मात्र चेतना असीम प्रेम और करुणा का अनुभव होता है।

आधुनिक तंत्रिका विज्ञान (Neuroscience) के शोध बताते हैं कि गहरे ध्यान और समाधि की अवस्था में मस्तिष्क के **डिफॉल्ट मोड नेटवर्क** (DMN) निष्क्रिय हो जाते हैं, जिससे 'स्व' की भावना लुप्त हो जाती है, गामा वेव्स और थीटा वेव्स अत्यधिक सक्रिय हो जाती हैं,

जिससे असीम शांति और आनंद का अनुभव होने लगता है। ध्यान में दीर्घकाल तक रहने वाले साधकों के मस्तिष्क की संरचना सामान्य व्यक्तियों से अलग पाई गई है। विज्ञान के ये निष्कर्ष इस बात की पुष्टि करते हैं कि ब्रह्मानुभूति कोई कल्पना नहीं, बल्कि मस्तिष्क और चेतना के स्तर पर वास्तविक घटना है। वैयक्तिक स्तर पर ब्रह्मानुभूति भय, दुख, मोह, क्रोध आदि से मुक्ति का माध्यम, आत्मसंतोष और स्थायी शांति की पोषक तथा अर्थपूर्ण एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन की प्राप्ति का लक्ष्य सुगम बनाती है। इस चेतनता के कारण सामाजिक स्तर पर समस्त प्राणियों के प्रति करुणा और प्रेम की भावना, भेदभाव, हिंसा और द्वेष का लोप, विश्वबंधुत्व का भाव जैसे विचारों का अभिर्भाव होता है। प्राचीन भारतीय ज्ञान एवं दर्शन परंपरा में ब्रह्मानुभूति को मोक्ष या कैवल्य की अवस्था कहा गया है जहाँ जन्म–मरण का चक्र समाप्त हो जाता है। साधक ब्रह्म में लीन होकर जीवन–मुक्त हो जाता है और यही योग की चरम अवस्था है। ब्रह्मानुभूति तक पहुँचने के प्रमुख साधनों में श्रवण (शास्त्रों और गुरु से ब्रह्मतत्व का ज्ञान ग्रहण करना), मनन (उस ज्ञान पर गहन चिंतन करना), निदिध्यासन (निरंतर ध्यान और समाधि द्वारा उस सत्य का अनुभव करना), योग, भक्ति, ज्ञान और कर्म अंततः साधक को ब्रह्मानुभूति की ओर ले जाते हैं। निष्कर्षतः ब्रह्मानुभूति साधना की वह पराकाष्ठा है जहाँ साधक अपने सीमित अस्तित्व से ऊपर उठकर असीम चेतना का अनुभव करता है। धारणा, ध्यान और समाधि केवल साधन हैं, जबकि ब्रह्मानुभूति ही साधना का अंतिम लक्ष्य है। उपनिषदों में ब्रह्मानुभूति को ईश्वर के साथ एकनिष्ठता का पर्याय बताया गया है , **"यत्र सर्वमात्मैवाभूत् तत् केन कं पश्येत।"** अर्थात् जब सब कुछ आत्मरूप हो जाता है, तब कौन किसे देखेगा? ध्यान का अंतिम लक्ष्य केवल मन को शांत करना नहीं है, बल्कि आत्मा और परमात्मा की वास्तविक एकता का अनुभव करना है। यह अवस्था ब्रह्मानुभूति या आत्मसाक्षात्कार कहलाती है।

जब साधक समाधि से भी आगे बढ़ता है और ब्रह्मस्वरूप में स्थित हो जाता है, तब उसमें न कोई द्वैत रह जाता है, न कोई भेदभाव, केवल सत्य–चैतन्य–आनंद की अनुभूति शेष रहती है। ब्रह्मानुभूति का अर्थ है– अपने भीतर विद्यमान शुद्ध चैतन्य का प्रत्यक्ष अनुभव। अद्वैत वेदांत **"अहं ब्रह्मास्मि"** (मैं ही ब्रह्म हूँ) और **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"** (यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्म ही है) को ही ज्ञान की पराकाष्ठा मानता है, इस अवस्था में साधक जानता नहीं, बल्कि स्वयं उस सत्य में लीन हो जाता है। वास्तव में ब्रह्मानुभूति साध्य है और ध्यान साधन है। समाधि में

साधक मन और इंद्रियों को रोककर आत्मा की झलक पाता है। ब्रह्मानुभूति में वह झलक स्थायी रूप से आत्मसत्ता में परिणत हो जाती है। ध्यान का निरंतर अभ्यास साधक को इस परम स्थिति तक ले जाता है। साधक के लिए कोई द्वैत (मैं और तुम, जीव और जगत) नहीं रह जाता, वह इंद्रिय सुख, वस्तुओं या परिस्थितियों पर निर्भर नहीं होता और भय तथा शोक से परे हो जाता है। उपनिषद् कहता है–

"यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति...यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत् केन कं पश्येत।"

अर्थात् जहाँ सब आत्मा ही आत्मा है, वहाँ भय, दुख या आसक्ति कैसे रहे? यह अवस्था कैवल्य (पूर्ण मुक्ति) है, जहां साधक करुणा औए प्रेममय होकर संपूर्ण सृष्टि को अपने ही स्वरूप में देखता है और सबके प्रति सहज प्रेम और करुणा का अनुभव करता है। ब्रह्मानुभूति साधना की दीर्घकालिक प्रक्रिया का परिणाम है न कि क्षणिक अनुभव, जिसे श्रवण (श्रुति का अध्ययन–उपनिषद् और गीता के वचनों को सुनना और पढ़ना), मनन (विचार–उन वचनों पर गहन चिंतन करना), निदिध्यासन (ध्यान–निरंतर ध्यान द्वारा उनका प्रत्यक्ष अनुभव करना) और समाधि (मन को एकाग्र और स्थिर करके आत्मा में लीन होना) आदि चरणों से गुजरते हुए आत्मा और परमात्मा के अद्वैत स्वरूप अर्थात ब्रह्मानुभूति का अनुभव प्राप्त होता है। छांदोग्य उपनिषद् में ब्रह्मानुभूति के भाव को **"तत्त्वमसि श्वेतकेतो"** (हे श्वेतकेतु, तू वही परम सत्य है), बृहदारण्यक उपनिषद् में **"अहं ब्रह्मास्मि"** (मैं ब्रह्म हूँ), तथा माण्डूक्य उपनिषद् में तुरीय अवस्था को ही ब्रह्मानुभूति माना गया है। इन महावाक्यों का सीधा उद्देश्य साधक को अद्वैत अनुभव की ओर ले जाना है। श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय 6, श्लोक 29) में कहा गया है **"सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥"** अर्थात योगयुक्त साधक अपने आत्मा को सब प्राणियों में और सब प्राणियों को अपने आत्मा में देखता है। यही ब्रह्मानुभूति है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार, ध्यान और समाधि में मस्तिष्क के Prefrontal Cortes और Parietal Lobes की गतिविधि विशेष रूप से बदल जाती है। आत्मसाक्षात्कार के अनुभव में Ego-Center (Self Referencing Network) निष्क्रिय हो जाता है। साधक को "Non-dual Awareness" (अद्वैत चेतना) की अनुभूति होती है। यह अनुभव न्यूरोलॉजिकल स्तर पर भी "परम शांति और एकत्व" को प्रदर्शित करता

है। शास्त्रों में ब्रह्मानुभूति के साधक (स्थितप्रज्ञ) के लक्षण बताए गए हैं सुख–दुख, लाभ–हानि, सम्मान–अपमान में समभाव। इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण, लोभ, क्रोध, मोह का अभाव, अंतःकरण में करुणा, प्रेम और क्षमा का वास, लोककल्याण की भावना से प्रेरित कार्य। भारतीय दर्शन मानता है कि मनुष्य जीवन का अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष है। यह मोक्ष केवल ब्रह्मानुभूति से ही संभव है। धर्म, अर्थ और काम जीवन के आवश्यक आयाम हैं, किंतु ये सब ब्रह्मानुभूति के बिना अपूर्ण हैं। अतः ध्यान और समाधि का अंतिम लक्ष्य ब्रह्मानुभूति है, जो जीवन को पूर्णता और अर्थ प्रदान करता है। निष्कर्षत: ब्रह्मानुभूति ध्यान साधना का अंतिम मुकाम है। यहाँ साधक किसी सिद्धि, शक्ति या अनुभव में नहीं उलझता, बल्कि सीधे अपने वास्तविक स्वरूप सत्य–चैतन्य–आनंद में स्थित होता है। वेदांत कहता है **"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"** अर्थात् ब्रह्म को जानने वाला स्वयं ब्रह्म हो जाता है। अतः ध्यान का अंतिम फल केवल शांति नहीं, बल्कि परम आनन्द और आत्मसाक्षात्कार है और इसे ही ब्रह्मानुभूति कहा गया है।

संदर्भ सूची:

1. पतंजलि, योग सूत्र (विभिन्न संस्करण और अनुवाद)।

2. व्यास, भगवद् गीता (स्वामी प्रभुपाद, स्वामी रंगनाथानंद आदि द्वारा अनुवाद)।

3. कठ, मुण्डक और छांदोग्य उपनिषद (विभिन्न अनुवाद)।

4. शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्र भाष्य।

5. विवेकानंद, स्वामी। (1896). राज योग।

6. श्री अरबिंदो। (1949). दिव्य जीवन। पांडिचेरी श्री अरबिंदो आश्रम।

7. योगानंद, परमहंस। (1946). एक योगी की आत्मकथा। लॉस एंजिल्स सेल्फ–रियलाइजेशन फेलोशिप।

8. ओशो। (1994). रहस्यों की पुस्तक। न्यूयॉर्क सेंट मार्टिन प्रेस।

9. शिवानंद, स्वामी। (2004). ध्यान और उसका अभ्यास। दिव्य जीवन सोसाइटी।

10. रमण महर्षि। (1985). मैं कौन हूँ? तिरुवन्नामलाई श्री रामानाश्रम।

11. महेश योगी, महर्षि। (1963). अस्तित्व का विज्ञान और जीवन जीने की कला। न्यूयॉर्क प्लूम।

12. कृष्णमूर्ति, जे. (1954). प्रथम और अंतिम स्वतंत्रता। हार्पर एंड रो।

13. जेम्स, विलियम। (1902). धार्मिक अनुभव की विविधताएँ। न्यूयॉर्क लॉन्गमैन्स, ग्रीन।

14. जंग, कार्ल जी. (1938). मनोविज्ञान और धर्म। येल यूनिवर्सिटी प्रेस।

15. कबाट–जिन, जॉन। (1994). आप जहाँ भी जाते हैं, वहीं होते हैं: दैनिक जीवन में माइंडफुलनेस मेडिटेशन। न्यूयॉर्क हाइपरियन।

16. गोलमैन, डैनियल। (1988). ध्यानपूर्ण मन। लॉस एंजिल्स टार्चर।

17. हक्सले, एल्डस। (1945). शाश्वत दर्शन। हार्पर एंड ब्रदर्स।

18. टॉल, एकहार्ट। (1997). अभी की शक्ति। न्यू वर्ल्ड लाइब्रेरी।

19. डेविडसन, आर. जे., एवं गोलमैन, डी. (1977). ध्यान और सम्मोहन में ध्यान की भूमिका एक मनो–जैविक परिप्रेक्ष्य। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्लिनिकल एंड एक्सपेरिमेंटल हिप्नोसिस, 25(4), 291-308।

20. न्यूबर्ग, ए., डी'एक्विली, ई., एवं राउज, वी. (2001). ईश्वर क्यों नहीं चले जाते मस्तिष्क विज्ञान और विश्वास का जीवविज्ञान। न्यूयॉर्कः बैलेंटाइन बुक्स।

21. वालेस, बी. ए. (2006). ध्यान क्रांति केंद्रित मन की शक्ति को उजागर करना। विजडम पब्लिकेशन्स।

22. लाजर, एस. डब्ल्यू., केर, सी. ई., वासरमैन, आर. एच., आदि। (2005). ध्यान का अनुभव कॉर्टिकल मोटाई में वृद्धि से जुड़ा है। न्यूरा रिपोर्ट, 16(17), 1893-1897।

23. कबाट–जिन, जॉन। (1982). माइंडफुलनेस मेडिटेशन पर आधारित एक बाह्य रोगी कार्यक्रम क्रोनिक दर्द के रोगियों के लिए व्यवहार चिकित्सा। जनरल हॉस्पिटल साइकियाट्री, 4(1), 33-47।

24. तैमनी, आई. के. (1961). योग का विज्ञान। थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस।

25. फ्यूरस्टीन, जी. (2001). योग परंपरा इसका इतिहास, साहित्य, दर्शन और अभ्यास। होहम प्रेस।

26. सरस्वती, स्वामी सत्यानंद। (1974). ध्यान और मंत्र। बिहार योग विद्यालय।

27. तिगुणायत, पं. राजमणि। (2009). योग सूत्र का रहस्य। हिमालयन इंस्टीट्यूट प्रेस।

28. राधा, स्वामी शिवानंद। (1978). पश्चिम के लिए कुंडलिनी योग। शम्भाला प्रकाशन।

Copyright © 2025 Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).